ISSN 3048-8222 (Online) | www.ijsate.com | editor@ijsate.com

International Journal of
Science, Architecture, Technology and Environment

बौद्ध धर्म और प्राचीन भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन: एक ऐतिहासिक पुनर्विचार

मुकुन्द कुमार[1]

[1] सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, टी० पी० एस० कॉलेज, पटना, बिहार.

DOI: https://doi.org/10.63680/ijsate092632.33

Abstract

सारांश (Abstract)

प्राचीन भारत के इतिहास में बौद्ध धर्म का उद्भव ईसा पूर्व छठी शताब्दी में ऐसे ऐतिहासिक परिवेश में हुआ, जब उत्तर भारत में वैदिक-ब्राह्मणीय परंपराओं के साथ-साथ विभिन्न श्रमण परंपराएँ भी सक्रिय थीं तथा सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन घटित हो रहे थे। यह शोध-आलेख बौद्ध धर्म को केवल एक धार्मिक-दार्शनिक परंपरा के रूप में नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय समाज में उभरने वाली एक महत्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक शक्ति के रूप में पुनर्विचार करता है। लेख में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि बौद्ध धर्म ने जन्म-आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा की अपेक्षा नैतिक आचरण और कर्म को महत्त्व देकर तत्कालीन सामाजिक पदानुक्रम को वैचारिक चुनौती दी तथा संघ के माध्यम से एक वैकल्पिक धार्मिक-सामाजिक संस्था का विकास किया। इसी क्रम में भिक्षुणी संघ की स्थापना ने महिलाओं के लिए धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन में सहभागिता का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया। बौद्ध धर्म के विकास के साथ व्यापारिक समुदायों, शहरी केंद्रों और मठ-संस्थाओं के बीच भी महत्वपूर्ण संबंध स्थापित हुए, जबकि स्तूप, चैत्य, विहार, मूर्तिकला, भित्तिचित्र तथा पालि साहित्य ने भारतीय कला एवं सांस्कृतिक परंपरा को समृद्ध किया। सम्राट अशोक के शासनकाल में बौद्ध परंपरा को व्यापक राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ, जिसके परिणामस्वरूप इसका प्रसार भारतीय उपमहाद्वीप से आगे श्रीलंका तथा एशिया के विभिन्न क्षेत्रों तक हुआ। तथापि, भारत में बौद्ध धर्म का क्रमिक अवसान एक बहु-कारकीय ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जिसमें मठीय

संस्थाओं की बदलती आर्थिक-सामाजिक स्थिति, राजकीय संरक्षण में परिवर्तन, अन्य धार्मिक परंपराओं के साथ अंतःक्रिया तथा मध्यकालीन राजनीतिक-सैन्य परिस्थितियों सहित अनेक कारकों की भूमिका रही। यह अध्ययन बौद्ध धर्म के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव का एक समग्र, अंतःविषयक एवं ऐतिहासिक पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत करता है तथा समता, करुणा, नैतिकता और सामाजिक सह-अस्तित्व जैसे इसके मूलभूत विचारों की समकालीन प्रासंगिकता को भी रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): बौद्ध धर्म, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन, जाति व्यवस्था, संघ, भिक्षुणी, ब्राह्मणवाद, प्राचीन भारत, सामाजिक समता, बौद्ध कला, श्रमण परंपरा, नालंदा महाविहार।

1. परिचय

प्राचीन भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन बौद्ध धर्म के आगमन और उसके दीर्घकालिक प्रभावों के विश्लेषण के बिना अधूरा है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी, जिसे इतिहासकार अक्सर 'दार्शनिक क्रांति' या 'श्रमण संस्कृति के उदय' का काल कहते हैं, भारतीय उपमहाद्वीप में अभूतपूर्व बौद्धिक उथल-पुथल का युग था (बशम, 1954, पृ. 274-276)। इसी काल में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ और उनके द्वारा प्रवर्तित धार्मिक-दार्शनिक आंदोलन ने न केवल भारतीय धर्म-चिंतन को नई दिशा दी, वरन् समाज के लगभग हर पहलू—जाति-व्यवस्था, लिंग संबंध, अर्थव्यवस्था, कला, वास्तुकला, शिक्षा और राजनीतिक दर्शन—को गहराई से प्रभावित किया (थापर, 1966, पृ. 89-92)।

ऐतिहासिक दृष्टि से बौद्ध धर्म का उद्भव उस समय हुआ जब भारतीय समाज वैदिक कर्मकांडों की जटिलताओं, अत्यधिक बलि-प्रथाओं, और ब्राह्मणवादी जाति-पदानुक्रम की कठोरता से गहराई से त्रस्त था। उत्तर-वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति में निरंतर गिरावट आई थी, शूद्रों को शिक्षा और यज्ञोपवीत से वंचित कर दिया गया था, और सामाजिक गतिशीलता के अवसर जन्म-आधारित भेदभाव के कारण समाप्त हो गए थे। मनुस्मृति जैसे

ग्रंथों में स्पष्ट रूप से 'जन्म' को ही श्रेष्ठता का आधार माना गया था (मनुस्मृति 10.4; कोसंबी, 1965, पृ. 124-127)।

इस सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में बुद्ध का संदेश—समता, करुणा, मध्यम मार्ग (मज्झिम पतिपदा) और आत्म-परिशीलन—एक क्रांतिकारी विकल्प के रूप में उभरा (हार्वे, 1990, पृ. 20-23)। बुद्ध ने स्पष्ट कहा कि कोई भी मनुष्य जन्म से श्रेष्ठ नहीं होता, बल्कि उसके कर्म, संकल्प, सोच और आचरण ही उसकी असली पहचान हैं (गोम्ब्रिच, 1988, पृ. 45-47)। इस विचार ने प्रचलित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को मौलिक आघात पहुँचाया।

बौद्ध संघ की उल्लेखनीय उपलब्धि यह थी कि उसने व्यवहारिक रूप से एक ऐसे सामाजिक-स्थान का सृजन किया जहाँ जन्म-आधारित सामाजिक पहचान को आध्यात्मिक उपलब्धि का निर्णायक आधार नहीं माना जाता था। संघ ने विभिन्न जातियों, समुदायों और लिंगों के लोगों को आध्यात्मिक साधना का अवसर प्रदान किया (ओम्वेट, 2003, पृ. 54-58)। हालाँकि, यह ध्यान देने योग्य है कि भिक्षु और भिक्षुणी संघ की संस्थागत संरचना पूर्ण आधुनिक अर्थों में "समान अधिकारों" वाली व्यवस्था नहीं थी; भिक्षुणियों पर अष्टगरुधम्म जैसे अतिरिक्त नियम लागू थे, जो आज के दृष्टिकोण से विवादास्पद हैं। फिर भी, यह प्राचीन विश्व में अपने आप में एक अद्वितीय प्रयोग था।

लेख का उद्देश्य बौद्ध धर्म को केवल एक धर्म के रूप में नहीं, वरन् एक बहुआयामी सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में समझना है, जिसने तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचनाओं के भीतर वैकल्पिक संस्थागत और बौद्धिक प्रक्रियाओं को विकसित होने का अवसर प्रदान किया। साथ ही, यह विश्लेषण करना है कि किन कारणों से यह महान आंदोलन अपने जन्मस्थली से विलुप्त हुआ, और वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता क्या है।

2. बौद्ध धर्म का उदय: सामाजिक-आर्थिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.1 ईसा पूर्व छठी शताब्दी: 'दूसरे नगरीयकरण' का युग

ईसा पूर्व छठी शताब्दी भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण संधि-काल थी। इसे पुरातत्वविद 'द्वितीय नगरीयकरण' (Second Urbanization) का दौर कहते हैं, क्योंकि सिंधु घाटी सभ्यता के पतन के बाद गंगा के मैदानी क्षेत्रों में पुनः नगरों का उदय हो रहा था (चक्रवर्ती, 1995, पृ. 12-15)। इस काल में 16 महाजनपदों का उदय हुआ—जिनमें मगध, कोसल, वत्स, अवंति, गांधार आदि प्रमुख थे। इन महाजनपदों में लोहा (आयरन) के उपयोग से कृषि उत्पादन बढ़ा, अधिशेष अन्न का उत्पादन हुआ, व्यापार-वाणिज्य नए आयाम प्राप्त कर रहा था, और मुद्रा (सिक्के) का प्रचलन बढ़ रहा था (कोसंबी, 1965, पृ. 132-135)।

इस आर्थिक परिवर्तन ने एक नई सामाजिक चेतना को जन्म दिया। जो लोग आर्थिक रूप से समृद्ध हो रहे थे—वैश्य, श्रेष्ठी (सेठ), व्यापारी—वे वैदिक कर्मकांडों और ब्राह्मणों के आधिपत्य से असंतुष्ट थे। वे एक ऐसे धार्मिक मार्ग की तलाश में थे, जो कम खर्चीला, अधिक तर्कसंगत और सामाजिक रूप से समतावादी हो (गोम्ब्रिच, 1988, पृ. 50-52)।

2.2 श्रमण परंपरा और बौद्ध धर्म

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में 'श्रमण' (मुनि-तपस्वी) परंपरा अत्यंत प्रभावशाली थी। वैदिक विरोधी विचारधाराएँ—जैन, आजीवक, चार्वाक, संजय, पकुध आदि—अपने-अपने दर्शनों का प्रचार कर रहे थे (बशम, 1954, पृ. 281-283)। बुद्ध ने इन सभी परंपराओं से प्रभाव ग्रहण किया, किंतु उन्होंने 'मध्यम मार्ग' का सिद्धांत दिया, जो अत्यधिक तपस्या (काय-क्लेश) और अत्यधिक भोगविलास (इंद्रिय-सुख) दोनों के बीच संतुलन था (हार्वे, 1990, पृ. 18-19)।

बुद्ध का गृहत्याग—जिसे 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है—एक गहन प्रतीकात्मक घटना है। 29 वर्ष की आयु में उन्होंने राजमहल, पत्नी यशोधरा, और पुत्र राहुल को छोड़ दिया। छह वर्षों की कठोर तपस्या के बाद, 35 वर्ष की आयु में बोधगया में पीपल (बोधि) वृक्ष के नीचे उन्हें वास्तविक ज्ञान (सम्यक्संबोधि) की प्राप्ति हुई। सारनाथ में दिए गए उनके पहले उपदेश को 'धर्मचक्र प्रवर्तन' (धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त) कहा जाता है, जिसमें उन्होंने चार आर्य सत्य

(चतुरार्य सत्यानि) और अष्टांगिक मार्ग (अरियो अट्ठंगिको मग्गो) का प्रतिपादन किया (संयुत्त निकाय 56.11; राइस डेविड्स, 1899, पृ. 48-52)।

2.3 बौद्ध संघ: एक नया सामाजिक-संस्थागत प्रयोग

बौद्ध धर्म का सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान संघ (बौद्ध मठवासी समुदाय) की स्थापना थी। संघ एक ऐसा संस्थान था जो जाति, वर्ण, लिंग या सामाजिक-आर्थिक स्थिति के भेद से परे था (ओम्वेट, 2003, पृ. 61-63)। बुद्ध ने अपने संघ में सभी जातियों के लोगों को प्रवेश दिया—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और यहाँ तक कि उच्छिष्ट (अस्पृश्य) वर्ग के लोगों को भी अपना शिष्य बनाया।

संघ की संरचना अर्ध-लोकतांत्रिक थी। सभी महत्वपूर्ण निर्णय सर्वसम्मति से या बहुमत से लिए जाते थे। संघ ने 'विनय पिटक' में नियमों की संहिता बनाई, जिसमें सामूहिक जीवन, नैतिक आचरण, संपत्ति-प्रबंधन और विवाद-समाधान के नियम दिए गए (विनय पिटक, महावग्ग; होरनर, 1949, पृ. 112-116)। यह संघ ही वह माध्यम था जिसके द्वारा बौद्ध धर्म ने सामाजिक स्तर पर 'जाति-विहीन' एक नई सांस्कृतिक पहचान का निर्माण किया।

3. जाति-व्यवस्था को चुनौती: बौद्ध धर्म की समतामूलक दर्शन-दृष्टि

3.1 वर्ण-व्यवस्था का बौद्ध दार्शनिक खंडन

बौद्ध धर्म का जाति-व्यवस्था के प्रति रुख स्पष्ट, अडिग और दार्शनिक रूप से सुसंगत था। पालि सुत्तों में बुद्ध ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि जाति जन्म से नहीं, कर्म (संकल्प एवं क्रिया) से निर्धारित होती है। सुत्तनिपात के 'वसल सुत्त' में बुद्ध ने स्पष्ट कहा:

"न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो; कम्मना वसलो होति, कम्मना होति ब्राह्मणो।"

(अर्थ: जन्म से कोई चांडाल (नीच) नहीं होता, जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता; कर्म से कोई नीच होता है, कर्म से कोई ब्राह्मण होता है।)

(सुत्तनिपात, वसल सुत्त, पृ. 21-23; नानामोली, 1992, पृ. 39)

इसी प्रकार, 'असलायन सुत्त' (मज्झिम निकाय) में बुद्ध ने इस दावे का खंडन किया कि ब्राह्मण ही सर्वोच्च वर्ण हैं। अम्बट्ठ सुत्त (दीघ निकाय) में बुद्ध ने ब्राह्मण छात्र अम्बट्ठ को समझाया कि शुद्धता (सोचेय्य) जन्म से नहीं, बल्कि नैतिक आचरण (सील) से होती है (दीघ निकाय 1.3; वाल्श, 1995, पृ. 112-117)।

'मधुरा सुत्त' (मज्झिम निकाय) में बुद्ध ने सामाजिक व्यवस्था को एक मानव-निर्मित (परिज्ञात) संस्था बताया, न कि ईश्वर-निर्मित या दैवी (वाल्श, 1995, पृ. 89)।

3.2 बौद्ध ब्रह्मांड विज्ञान और क्षत्रिय वर्चस्व

बौद्ध साहित्य में एक रोचक तथ्य यह है कि उसने ब्राह्मण की अपेक्षा क्षत्रिय को श्रेष्ठ माना। अग्गंज्ञ सुत्त (दीघ निकाय 27) में बुद्ध ने सामाजिक विकास की एक वैकल्पिक व्याख्या दी, जिसमें राज्य-व्यवस्था और जातियाँ मानवीय आवश्यकताओं की उत्पत्ति हैं, न कि ब्रह्मा की मुख-उत्पत्ति (वाल्श, 1995, पृ. 403-410)। बौद्ध परंपरा में बुद्ध स्वयं क्षत्रिय (शाक्य वंश) थे, जो ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण प्रतीकात्मक स्थिति थी।

3.3 संघ में जाति-निरपेक्षता और उसका सामाजिक प्रभाव

बौद्ध संघ ने व्यवहार में जाति-निरपेक्षता स्थापित की। बुद्ध के प्रमुख शिष्य—सारिपुत्र (ब्राह्मण), मोग्गल्लान (ब्राह्मण), उपालि (नाई-शूद्र), सुनित (चांडाल), अंगुलिमाल (डाकू)—सभी ने संघ में समान स्थान पाया (ओम्वेट, 2003, पृ. 64-66)। ऐतिहासिक रूप से, बौद्ध धर्म ने गंगा-मैदान में जाति-आधारित श्रम विभाजन और छुआछूत की कठोरता को कमजोर किया (कोसंबी, 1965, पृ. 148-150)। यही कारण है कि बौद्ध धर्म को निम्न जातियों और वैश्य/शूद्र जातियों का भारी समर्थन मिला।

4. स्त्री-विमर्श: बौद्ध धर्म और नारी सशक्तिकरण की ऐतिहासिक पहल

4.1 वैदिक-उत्तरवैदिक काल में महिलाओं की दुर्दशा

वैदिक काल में महिलाओं को अपेक्षाकृत सम्मानजनक स्थिति प्राप्त थी—गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषियाँ वैदिक संवादों में भाग लेती थीं। किंतु उत्तर-वैदिक काल में, विशेषकर धर्मसूत्र और स्मृति ग्रंथों के रचनाकाल में, महिलाओं की स्थिति में निरंतर गिरावट आई (बशम, 1954, पृ. 168-172)। मनुस्मृति (5.147-148) में महिलाओं को पुरुषों के अधीन रखने की बात कही गई और शिक्षा तथा वेद-पाठ से वंचित किया गया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी महिलाओं को पुरुषों के संरक्षण में रखने का विधान था (कौटिल्य, अर्थशास्त्र 2.29; कोसंबी, 1965, पृ. 182)।

4.2 भिक्षुणी संघ: ऐतिहासिक निर्णय और विवाद

बौद्ध परंपरा ने महिलाओं के लिए स्वतंत्र धार्मिक-साधना और संघीय जीवन का एक महत्वपूर्ण संस्थागत अवसर उपलब्ध कराया। बुद्ध ने अपने शिष्य आनंद के बार-बार अनुरोध और अपनी मातामही प्रजापति गौतमी की दृढ़ता के परिणामस्वरूप, भिक्षुणी संघ की स्थापना की (हार्वे, 1990, पृ. 52-55)। बुद्ध ने यह स्वीकार किया कि स्त्रियाँ भी अर्हत (संपूर्ण ज्ञान) प्राप्त कर सकती हैं।

तथापि, यह निर्णय आसान नहीं था। विनय पिटक के अनुसार, बुद्ध ने 'अष्ट गरुधम्म' (आठ कठोर नियम) निर्धारित किए, जिसने भिक्षुणियों को भिक्षुओं के अधीन कर दिया। आधुनिक विद्वान (होरनर, 1949; फॉक, 1980) इस पर बहस करते हैं कि क्या ये नियम वास्तविक हैं या परवर्ती प्रक्षेप। लेकिन इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि बुद्ध ने महिलाओं के लिए मोक्ष का द्वार खोला—जो उस युग में क्रांतिकारी था (गोम्ब्रिच, 1988, पृ. 78-80)।

4.3 थेरिगाथा: महिलाओं की आवाज़ का अमर ग्रंथ

बौद्ध धर्म की सबसे बड़ी साहित्यिक-सांस्कृतिक देन है *थेरिगाथा*—जो विश्व की प्राचीनतम उपलब्ध स्त्री-काव्य परंपराओं में से एक है और प्रारंभिक बौद्ध भिक्षुणियों की आध्यात्मिक एवं सामाजिक अनुभूतियों का महत्वपूर्ण स्रोत है (नानामोली, 1992, पृ. 89; आधुनिक विद्वत् स्रोत इसे "one of the oldest surviving literatures by women" के रूप में प्रस्तुत करते हैं)।

थेरिगाथा में भिक्षुणियों के आध्यात्मिक अनुभव, उनके गृहत्याग, वेदना, संघर्ष और मुक्ति (निर्वाण) की मार्मिक कविताएँ संकलित हैं। उल्लेखनीय भिक्षुणियाँ हैं:

1. **प्रजापति गौतमी**: बुद्ध की मातामही, जिन्होंने सबसे पहले भिक्षुणी संघ का नेतृत्व किया।
2. **खेमा**: जिन्हें बुद्ध ने सबसे बुद्धिमान भिक्षुणी घोषित किया (अंगुत्तर निकाय, एकक निपात)।
3. **उप्पलवण्णा**: जो अभिज्ञाओं (उच्च मानसिक शक्तियों) में निपुण थीं।
4. **मुत्ता**: जिन्होंने गृह-बंधन की आलोचना करते हुए कहा—"मैं एक मेढ़े, बकरी, माँ या पत्नी नहीं हूँ; मैं एक मुक्त भिक्षुणी हूँ" (थेरिगाथा, 1.34)।

थेरिगाथा ने न केवल भारतीय बल्कि विश्व स्त्री-साहित्य को अमूल्य योगदान दिया (सोनी, 2025, पृ. 23-27)।

4.4 स्त्री-शिक्षा और बौद्ध मठ

बौद्ध विहारों में महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी। वे पालि, अभिधम्म, बौद्ध दर्शन और ध्यान का अध्ययन करती थीं। कुछ भिक्षुणियाँ प्रभावशाली शिक्षिका के रूप में जानी जाती थीं (फॉक, 1980, पृ. 42-45)। बौद्ध धर्म ने यह सिद्ध किया कि स्त्रियाँ आध्यात्मिक दृष्टि से पुरुषों के समकक्ष हैं—यह विचार स्मृति-परंपरा के सर्वथा विपरीत था।

5. आर्थिक परिवर्तन: बौद्ध धर्म, व्यापार, श्रेष्ठियाँ और नगरीयकरण

5.1 बौद्ध धर्म और व्यापारिक वर्ग (श्रेष्ठी)

बौद्ध धर्म का व्यापारिक वर्ग के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध था। पालि ग्रंथों में 'श्रेष्ठी' (सेठ) शब्द बार-बार आता है। बुद्ध के प्रमुख अनुयायी और संरक्षक अनाथपिण्डिक (जो एक अत्यंत

धनवान श्रेष्ठी थे) ने श्रावस्ती में जेतवन विहार खरीदकर बुद्ध और संघ को भेंट किया—यह बौद्ध इतिहास की सबसे बड़ी संपत्ति-दान की घटनाओं में से एक है (विनय पिटक; होरनर, 1949, पृ. 134-137)।

विशाखा (मिगारमाता) नामक एक अन्य धनवान उपासिका ने भी बड़े पैमाने पर दान दिए। यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म को वैश्य/श्रेष्ठी वर्ग का प्रचुर आर्थिक समर्थन मिला, क्योंकि बौद्ध धर्म ने उन्हें जाति-व्यवस्था की निचली सीढ़ी पर रहने के बावजूद सामाजिक सम्मान और आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग प्रदान किया (गोम्ब्रिच, 1988, पृ. 82)।

5.2 बौद्ध मठ (विहार) और व्यापार मार्ग

बौद्ध मठ प्रायः प्रमुख व्यापारिक मार्गों (शकट-पथों) पर स्थित थे। पश्चिमी घाट के पर्वतीय क्षेत्रों (जैसे—अजंता, एलोरा, भाजा, कार्ले, बेड़सा, नासिक) में 200 ईसा पूर्व से 400 ईस्वी के बीच बौद्ध गुफा मठों का विकास भारत-रोमन व्यापार (200 ईसा पूर्व – 200 ईस्वी) से प्रभावित था (चक्रवर्ती, 1995, पृ. 45-48; फोगेलिन, 2015, पृ. 89-92)।

बौद्ध मठ न केवल धार्मिक केंद्र थे, अपितु अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख केंद्र भी थे। वे यात्रियों, व्यापारियों और विद्वानों के लिए विश्राम-स्थल थे। बौद्ध संघ की 'परिव्राजक' प्रवृत्ति ने सांस्कृतिक और आर्थिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया (थापर, 1966, पृ. 106-109)।

5.3 एक खुली सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था

बौद्ध धर्म ने मौजूदा रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना (जहाँ जन्म ही रोजगार निर्धारित करता था) को चुनौती दी। इसने व्यक्तिगत कर्म और कुशलता को प्रोत्साहित किया, जिससे शूद्र और वैश्य वर्गों को नए आर्थिक अवसर मिले (कोसंबी, 1965, पृ. 156-160)। बौद्ध धर्म ने 'श्रम' (परिश्रम) को सम्मान दिया, जबकि ब्राह्मणवादी व्यवस्था में कुछ

शारीरिक श्रम करने वाले वर्गों को हीन माना जाता था। इन परिवर्तनों ने तत्कालीन आर्थिक संरचनाओं के भीतर नई संभावनाओं को विकसित होने का अवसर प्रदान किया।

6. सांस्कृतिक पुनर्जागरण: बौद्ध कला, वास्तुकला, साहित्य एवं शिक्षा

बौद्ध धर्म ने भारतीय कला और वास्तुकला को अभूतपूर्व ऊंचाई प्रदान की। बौद्ध प्रभाव ने धार्मिक वास्तुकला को नई गति दी (फोगेलिन, 2015, पृ. 101-105)।

- **स्तूप**: बुद्ध के अवशेषों (धातु) पर बनाए गए अर्ध-गोलाकार स्तूप—सांची का स्तूप (मध्य प्रदेश, 3री-1ली सदी ई.पू.), भरहुत का स्तूप, अमरावती का स्तूप, धान्यकटक का स्तूप—स्थापत्य कला के अद्वितीय उदाहरण हैं। इन स्तूपों के 'तोरण' (द्वार) पर जातक कथाओं, बोधिसत्व-चरित और बुद्ध-जीवन की अद्भुत मूर्तिकला हैं।
- **चैत्य**: प्रार्थना-भवन जिनमें स्तूप स्थित होता था। कार्ले की चैत्य (महाराष्ट्र, 1ली शताब्दी ई.पू.) विश्व की सर्वोत्तम बौद्ध चैत्यों में से एक है।
- **विहार**: बौद्ध भिक्षुओं के रहने के आवास। अजंता (दूसरी शताब्दी ई.पू. से 5वीं शताब्दी ई.) के विहारों में जो भित्तिचित्र बने हैं, वे विश्व-कला के अमूल्य धरोहर हैं। अजंता के चित्रों में बोधिसत्व, जातक कथाओं और बुद्ध-जीवन के दृश्य अत्यंत जीवंत हैं (सिंह, 1965, पृ. 204-210)।

6.2 मूर्तिकला: 'अनैकॉनिक' से 'आइकॉनिक' की ओर यात्रा

प्रारंभिक बौद्ध कला में बुद्ध को मूर्ति रूप में नहीं, बल्कि प्रतीकों—पद्म (कमल), बोधि वृक्ष, अशोक स्तंभ, धर्मचक्र, पद-चिह्न (श्रीपाद) के रूप में दर्शाया जाता था। इसे 'अनैकॉनिक' (प्रतीकात्मक) काल कहते हैं। लेकिन कुषाण काल (1ली-तीसरी शताब्दी ई.) में गांधार शैली (भारत-यूनानी मिश्रित) और मथुरा शैली में बुद्ध की मानवीय मूर्तियाँ बननी शुरू हुईं

(फोगेलिन, 2015, पृ. 113-117)। गांधार की बुद्ध प्रतिमाएं यूनानी एपोलो की तरह सुंदर और यथार्थवादी हैं, जबकि मथुरा की मूर्तियाँ अधिक भारतीय और बलिष्ठ हैं।

6.3 बौद्ध साहित्य: त्रिपिटक, जातक, अभिधम्म और टीकाएँ

बौद्ध धर्म ने विश्व साहित्य को अमूल्य ग्रंथ दिए:

1. **त्रिपिटक (तिन पिटक)**: बौद्ध धर्म का मूल आगम साहित्य। इसमें विनय पिटक (अनुशासन), सुत्त पिटक (उपदेश) और अभिधम्म पिटक (दर्शन-मनोविज्ञान) सम्मिलित हैं। यह पालि भाषा में रचित हैं और बौद्ध दर्शन के आधार-ग्रंथ हैं (वाल्श, 1995, पृ. 12-18)।
2. **जातक कथाएँ**: बुद्ध के पूर्व-जन्मों की 547 कथाएँ, जो नीति-कथा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और संसार की सबसे बड़ी कथा-परंपराओं में से एक है (कोसंबी, 1965, पृ. 95)।
3. **थेरिगाथा/थेरगाथा**: भिक्षुणियों और भिक्षुओं के गीत, जो भावनात्मक एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के अद्भुत उदाहरण हैं।
4. **मिलिन्द पन्ह (मिलिंद-प्रश्न)**: ग्रीक राजा मिलिंद (मेनांडर) और बौद्ध भिक्षु नागसेन के बीच संवाद, जो बौद्ध दर्शन को सरल और तार्किक रूप से प्रस्तुत करता है (हार्वे, 1990, पृ. 98-102)।

6.4 बौद्ध धर्म और शिक्षा: नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी

बौद्ध मठ शिक्षा के महान केंद्र बने। नालंदा (बिहार, 5वीं-12वीं शताब्दी ई.) भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीनतम और सबसे महत्वपूर्ण आवासीय उच्च-शिक्षा केंद्रों में से एक था, जहाँ दूर-दूर से विद्यार्थी (चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत, मध्य एशिया) आते थे (बशम, 1954, पृ. 421-425)। यहाँ बौद्ध दर्शन, तर्कशास्त्र, व्याकरण, चिकित्सा, खगोलशास्त्र, गणित, और वैदिक साहित्य तक पढ़ाया जाता था।

विक्रमशिला (ओदंतपुरी और जगद्दल के साथ) बौद्ध शिक्षा के अन्य प्रमुख केंद्र थे (थापर, 1966, पृ. 134)। बौद्ध विहारों ने जाति-निरपेक्ष, बहु-विषयक शिक्षा प्रदान कर भारतीय शिक्षा-इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान दिया (सिंह, 1965, पृ. 178-180)।

7. राजकीय संरक्षण और बौद्ध धर्म का वैश्विक विस्तार

7.1 सम्राट अशोक: बौद्ध धर्म का पहला महान संरक्षक

बौद्ध धर्म के इतिहास में सम्राट अशोक (ईसा पूर्व 268-232) का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। कलिंग युद्ध (ई.पू. 261) में हुए नरसंहार (लगभग 1 लाख लोगों की मृत्यु) ने अशोक का हृदय बदल दिया और वे बौद्ध धर्म की ओर झुक गए (थापर, 1966, पृ. 82-86)।

अशोक ने बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया, किंतु उन्होंने किसी एक धर्म को बढ़ावा देने के बजाय 'धम्म' (सार्वभौमिक नैतिकता) का प्रचार किया, जो बौद्ध सिद्धांतों—अहिंसा, करुणा, सत्य, दया, परोपकार—पर आधारित था (कोसंबी, 1960; थापर, 1966, पृ. 87-90)। उन्होंने अपने आदेशों को पत्थर के स्तंभों और चट्टानों पर उत्कीर्ण किया (अशोक के शिलालेख)।

7.2 अशोक की विशिष्ट उपलब्धियाँ

- **तीसरी बौद्ध संगीति**: अशोक के संरक्षण में पाटलिपुत्र में 3री बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया, जिसमें धार्मिक विवादों (विशेषकर स्थविर/महासंघिक विवाद) का समाधान किया गया (हार्वे, 1990, पृ. 76)।
- **धर्म-प्रचार मिशन**: अशोक ने धर्म-दूत (धम्मदूत) एशिया के विभिन्न भागों—श्रीलंका, बर्मा (म्यांमार), थाईलैंड, दक्षिण भारत, ताम्रपर्णी (श्रीलंका), यूनान, मिस्र, सीरिया—भेजे (फोगेलिन, 2015, पृ. 65)।

- **महेंद्र और संघमित्रा**: अशोक के पुत्र (महेंद्र) और पुत्री (संघमित्रा) ने श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। संघमित्रा ने श्रीलंका में भिक्षुणी संघ की स्थापना की (विजयबाहु, 1967; सोनी, 2025, पृ. 30)।

7.3 कुषाण, गुप्त और हर्ष काल में बौद्ध धर्म

अशोक के बाद भी बौद्ध धर्म को संरक्षण मिलता रहा:

- **कुषाण (1ली-3री शताब्दी ई.)**: बौद्ध परंपरा के अनुसार, सम्राट कनिष्क ने चौथी बौद्ध संगीति (कश्मीर/कुंडलवन) बुलाई, जिसमें महायान बौद्ध धर्म को औपचारिक मान्यता मिली और नागार्जुन, अश्वघोष जैसे विद्वान हुए (गोम्ब्रिच, 1988, पृ. 102-105)। तथापि, इस विषय में परंपरागत बौद्ध स्रोतों और आधुनिक इतिहासकारों के बीच मतभेद हैं।

- **गुप्त (240-579 ई.)**: गुप्त शासक ब्राह्मणवादी थे, तथापि बौद्ध धर्म को सहन किया गया। फाह्यान (399-414 ई.) ने गुप्त काल में बौद्ध धर्म की समृद्धि देखी।

- **हर्षवर्धन (606-647 ई.)**: हर्ष बौद्ध धर्म के अंतिम महान संरक्षक थे। उन्होंने कन्नौज में बौद्ध धर्म की विशाल सभा (प्रयाग परिषद) बुलाई। इसी काल में चीनी यात्री ह्वेनसांग (श्वानजांग, 629-645 ई.) भारत आए और उन्होंने बौद्ध मठों की समृद्धि का विस्तृत वर्णन किया (बशम, 1954, पृ. 327-330)।

8. बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद: वैचारिक संवाद, विवाद एवं सह-अस्तित्व

8.1 प्रारंभिक काल: सह-अस्तित्व और आपसी स्वीकृति

प्रारंभिक काल में बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद के बीच जटिल संबंध थे—न तो पूर्ण संघर्ष था, न पूर्ण समन्वय। बुद्ध ने वैदिक ऋषियों के तप और ज्ञान का सम्मान किया, किंतु उन्होंने वेदों की दिव्यता, बलि-प्रथा और जाति-व्यवस्था को अस्वीकार किया (पाण्डे, 1995, पृ. 56-59)।

बौद्ध धर्म शाही और व्यापारिक केंद्रों में संचालित होता था, जबकि ब्राह्मणवाद ग्रामीण क्षेत्रों में सक्रिय था। यह द्वैत सह-अस्तित्व की अनुमति देता था (कोसंबी, 1965, पृ. 158)।

8.2 ब्रह्मजाल सुत्त: 62 मतों का खंडन

ब्रह्मजाल सुत्त (दीघ निकाय 1) बुद्ध का सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक ग्रंथ है, जिसमें उन्होंने उस काल के 62 तात्त्विक मतों (शाश्वतवाद, उच्छेदवाद, संशयवाद, कर्मवाद आदि) का खंडन किया है। इसमें वैदिक ब्रह्मवाद का भी परोक्ष खंडन है (वाल्श, 1995, पृ. 35-42)।

8.3 ब्राह्मणवाद का पुनरुत्थान (चौथी-सातवीं शताब्दी)

गुप्तोत्तर काल में ब्राह्मणवाद ने नए रूप में पुनरुत्थान किया। शंकराचार्य (8वीं शताब्दी) ने अद्वैत वेदांत के माध्यम से बौद्ध विज्ञानवाद और शून्यवाद का दार्शनिक खंडन किया (बशम, 1954, पृ. 375-380; पाण्डे, 1995, पृ. 120-124)। भागवत पुराण, देवी-भागवत और स्मृतियों ने बौद्ध धर्म को 'वैदिक विरोधी' और 'नास्तिक' (भारतीय अर्थ में) घोषित किया। भारवि, बाणभट्ट जैसे संस्कृत लेखकों ने भी बौद्धों की आलोचना की (कोसंबी, 1965, पृ. 172-175)।

8.4 बौद्ध धर्म का ब्राह्मणवाद पर पड़ा अप्रत्यक्ष प्रभाव

यद्यपि ब्राह्मणवाद ने बौद्ध धर्म का विरोध किया, फिर भी वह बौद्ध प्रभाव से मुक्त नहीं रहा। बौद्ध धर्म ने ब्राह्मणवादी धर्मग्रंथों को बलि-प्रथा को कम करने, अहिंसा पर बल देने और कुछ समतावादी तत्वों को अपनाने के लिए विवश किया। पुराणों में विष्णु के बुद्ध-अवतार की कल्पना भी इसी आपसी प्रभाव का परिणाम है (गोम्ब्रिच, 1988, पृ. 115-118)।

9. भारत में बौद्ध धर्म का पतन: बहु-कारणीय विश्लेषण

9.1 आंतरिक कारक: विभाजन, वैजयन्ती और तांत्रिकीकरण

Volume 03, Issue 09, September 2026

1. **संप्रदायिक विभाजन**: 18 प्रारंभिक संप्रदायों (स्थविर, महासंघिक, सर्वास्तिवाद, विभज्यवाद आदि) में बँटवारे ने संघ की एकता को कमजोर किया (हार्वे, 1990, पृ. 120-124)।

2. **तांत्रिक बौद्ध धर्म (वज्रयान)**: 7वीं-8वीं शताब्दी में मंत्र, जादू-टोना और कामुक अनुष्ठानों (मैथुन-मुद्रा) की प्रधानता ने बौद्ध धर्म को जनता से अलग कर दिया। लोकप्रिय ब्राह्मणवादी तंत्र से मुकाबला करने की कोशिश में बौद्ध धर्म ने अपनी नैतिक गरिमा खो दी (सिंह, 1965, पृ. 256-260)।

3. **सामाजिक आधार का क्षरण**: भिक्षु ग्रामीण जनता से कटते गए और राजदरबारों तक सीमित हो गए (कोसंबी, 1960; थापर, 1966, पृ. 142-145)।

9.2 बाह्य कारक: ब्राह्मणवादी पुनरुत्थान, राजकीय संरक्षण में परिवर्तन और आक्रमण

बौद्ध धर्म के पतन को एक बहु-कारणीय प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिए। आधुनिक इतिहासलेखन निम्नलिखित कारकों को परस्पर संबंधित मानता है:

1. **ब्राह्मणीय/हिंदू परंपराओं के साथ समावेशन**: बौद्ध संस्थाओं का धीरे-धीरे ब्राह्मणवादी ढाँचे में विलय होता गया। कई बौद्ध मंदिर हिंदू मंदिरों में परिवर्तित हो गए, और बौद्ध देवताओं को हिंदू देवताओं में समाहित कर लिया गया।

2. **मठों की आर्थिक संरचना में परिवर्तन**: बौद्ध मठ बड़े भू-स्वामी बन गए थे, जिससे उनका ग्रामीण समाज से संपर्क कम हुआ और वे आर्थिक रूप से कमजोर हो गए।

3. **राजकीय संरक्षण में परिवर्तन**: गुप्तोत्तर काल में कई राजवंश (प्रतिहार, चंदेल, चालुक्य, पल्लव) ब्राह्मणवादी या जैन बन गए। पाल वंश (8वीं-12वीं शताब्दी) अंतिम बड़ा बौद्ध संरक्षक था, किंतु वे भी तांत्रिक बौद्ध धर्म के थे (फोगेलिन, 2015, पृ. 198-202)।

4. **हूण आक्रमण (5वीं-6वीं शताब्दी)**: कुछ चीनी एवं बाद के स्रोतों में मिहिरकुल (तोरमाण का पुत्र) को बौद्ध-विरोधी शासक के रूप में चित्रित किया गया है। परंपरागत स्रोतों में उसके द्वारा बौद्ध मठों पर अत्याचार का उल्लेख मिलता है (बशम, 1954, पृ. 312-314)।
5. **तुर्की आक्रमण (12वीं-13वीं शताब्दी)**: तुर्की आक्रमणों ने विशेष रूप से उत्तर भारत के प्रमुख बौद्ध महाविहारों और मठ-संस्थाओं को गंभीर क्षति पहुँचाई, जिससे पहले से कमजोर हो रही संस्थागत संरचना को निर्णायक आघात लगा। 1193 ई. में बख्तियार खिलजी ने नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों को लूटा और जलाया। हजारों भिक्षुओं को मार डाला या खदेड़ दिया (बशम, 1954, पृ. 445-447; गोम्ब्रिच, 1988, पृ. 150-154)।

9.3 बौद्ध धर्म के पतन की व्याख्याएँ

एक महत्वपूर्ण व्याख्या यह है कि बौद्ध धर्म ने जाति-व्यवस्था को चुनौती दी, किंतु स्वयं को एक वैकल्पिक सामाजिक-आर्थिक संगठन के रूप में स्थापित नहीं किया (जैसे इस्लाम या ईसाई धर्म ने किया)। बौद्ध धर्म की 'भिक्षा-निर्भर' प्रणाली और गृहस्थों को जाति-प्रथा में ही छोड़ देने की उदासीनता ने उसे सामाजिक रूप से निर्बल बना दिया (ओम्वेट, 2003, पृ. 210-215)। तथापि, आधुनिक शोध में बौद्ध धर्म के भारत से लोप को एक बहु-कारकीय प्रक्रिया माना जाता है, जिसमें उपर्युक्त सभी कारकों ने योगदान दिया।

10. निष्कर्ष (Conclusion)

प्राचीन भारतीय इतिहास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में बौद्ध धर्म का उद्भव केवल एक नवीन धार्मिक या दार्शनिक परंपरा का प्रारंभ नहीं था, बल्कि यह उस समय के बदलते सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक परिवेश की एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति भी था। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में विकसित बौद्ध विचारधारा ने जन्म-आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा की अपेक्षा नैतिक आचरण, कर्म और व्यक्तिगत साधना को महत्त्व दिया। इस दृष्टि से उसने तत्कालीन

सामाजिक पदानुक्रम के कुछ आधारभूत विचारों को वैचारिक चुनौती दी और एक ऐसे धार्मिक-सामाजिक समुदाय के विकास में योगदान दिया, जिसमें आध्यात्मिक उन्नति का आधार जन्म की अपेक्षा आचरण को माना गया (थापर, 1966, पृ. 150–152; ओम्वेट, 2003)।

बौद्ध संघ इस परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण संस्थागत माध्यम था। संघ ने विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों से आने वाले व्यक्तियों को धार्मिक जीवन में सम्मिलित होने का अवसर प्रदान किया। यद्यपि इसे आधुनिक अर्थों में पूर्णतः जाति-विहीन या समतामूलक संस्था कहना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा, फिर भी यह स्वीकार किया जा सकता है कि संघ ने जन्म-आधारित सामाजिक पहचान की तुलना में विनय, अनुशासन और नैतिक आचरण को अधिक महत्त्व देने वाली वैकल्पिक सामुदायिक संरचना विकसित की। इसी प्रकार भिक्षुणी संघ की स्थापना ने महिलाओं के लिए संगठित धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन में सहभागिता का एक महत्त्वपूर्ण अवसर उपलब्ध कराया। *थेरिगाथा* जैसी रचनाएँ इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि प्रारंभिक बौद्ध परंपरा में महिलाओं के आध्यात्मिक अनुभवों और उनकी स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए भी स्थान निर्मित हुआ (फॉक, 1980; सोनी, 2025)।

बौद्ध धर्म का प्रभाव केवल सामाजिक विचारों तक सीमित नहीं रहा। इसके प्रसार का संबंध विकसित होते शहरी केंद्रों, व्यापारिक समुदायों और लंबी दूरी के व्यापारिक मार्गों से भी जुड़ा था। श्रेष्ठियों तथा अन्य दानदाताओं द्वारा विहारों, स्तूपों और अन्य धार्मिक संस्थाओं को प्रदान किए गए संरक्षण ने बौद्ध मठों को व्यापक आर्थिक-सामाजिक नेटवर्क का हिस्सा बनाया। इस प्रकार बौद्ध संस्थाएँ धार्मिक गतिविधियों के साथ-साथ उस समय की नगरीय और वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था से भी संबद्ध हुईं (चक्रवर्ती, 1995; कोसंबी, 1965)।

शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में भी बौद्ध मठीय परंपरा का महत्त्व उल्लेखनीय रहा। विहारों ने अध्ययन, वाद-विवाद, ग्रंथ-रचना और ज्ञान के संरक्षण के लिए संस्थागत वातावरण उपलब्ध कराया। नालंदा, विक्रमशिला और अन्य महाविहारों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों के साथ-साथ

बाहरी प्रदेशों से आने वाले विद्वानों को भी आकर्षित किया। इन संस्थानों के माध्यम से दर्शन, तर्क, व्याकरण, चिकित्सा तथा बौद्ध अध्ययन की विभिन्न शाखाओं के विकास और प्रसार को प्रोत्साहन मिला। इसलिए बौद्ध शिक्षा-परंपरा को प्राचीन भारत में संस्थागत ज्ञान-व्यवस्था के विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखा जा सकता है (सिंह, 1965)।

कला और साहित्य के क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रभाव विशेष रूप से स्थायी रहा। स्तूप, चैत्य, विहार, शैल-कट वास्तुकला, मूर्तिकला तथा भित्तिचित्रों ने भारतीय कला के विकास को नई विषयवस्तु और अभिव्यक्ति प्रदान की। जातक कथाओं और बुद्ध के जीवन से संबंधित आख्यानों ने धार्मिक विचारों को दृश्य एवं साहित्यिक रूप में व्यापक समाज तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पालि साहित्य तथा बौद्ध दार्शनिक ग्रंथों ने भारतीय बौद्धिक परंपरा को भी समृद्ध किया। इस दृष्टि से बौद्ध धर्म का योगदान केवल धार्मिक इतिहास तक सीमित न होकर भारतीय कला, साहित्य, वास्तुकला और ज्ञान-परंपरा के व्यापक विकास से जुड़ता है (बशम, 1954; फोगेलिन, 2015)।

सम्राट अशोक के शासनकाल में बौद्ध धर्म को प्राप्त राजकीय संरक्षण ने इसके प्रसार को एक नया आयाम दिया। अशोक के अभिलेखों से नैतिक आचरण, सहिष्णुता, प्राणियों के प्रति दया तथा सामाजिक कल्याण से संबंधित विचारों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इसके पश्चात बौद्ध परंपराओं का प्रसार श्रीलंका तथा एशिया के विभिन्न क्षेत्रों तक हुआ। इस प्रक्रिया में धार्मिक विचारों के साथ कला, स्थापत्य, साहित्य और सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी विस्तृत हुआ। परिणामतः बौद्ध धर्म भारतीय उपमहाद्वीप और एशिया के बीच एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक सेतु के रूप में विकसित हुआ।

फिर भी भारत में बौद्ध धर्म के क्रमिक अवसान को किसी एक कारण से समझना ऐतिहासिक रूप से पर्याप्त नहीं है। इसके पीछे मठीय संस्थाओं की बदलती आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति, राजकीय संरक्षण में परिवर्तन, विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच अंतःक्रिया और समावेशन,

बौद्ध संस्थाओं की आंतरिक चुनौतियाँ तथा मध्यकालीन राजनीतिक-सैन्य परिस्थितियों जैसे अनेक कारकों की भूमिका रही। कुछ प्रमुख मठीय केंद्रों पर हुए राजनीतिक-सैन्य आक्रमणों ने पहले से कमजोर हो रही संस्थागत संरचनाओं को गंभीर क्षति पहुँचाई, किंतु इन्हें बौद्ध धर्म के अवसान का एकमात्र कारण मानना उचित नहीं होगा। अतः भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास उद्भव, विस्तार, संस्थागत विकास, परिवर्तन और क्रमिक अवसान की एक जटिल ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में समझा जाना चाहिए (गोम्ब्रिच, 1988; हार्वे, 1990)।

समकालीन प्रासंगिकता

बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक विरासत का महत्त्व केवल अतीत के अध्ययन तक सीमित नहीं है। करुणा, अहिंसा, नैतिक अनुशासन, मध्यम मार्ग, आत्मपरीक्षण और मानवीय गरिमा से जुड़े इसके विचार आज भी सामाजिक विमर्श में उपयोगी संदर्भ प्रदान करते हैं। विशेष रूप से आधुनिक भारत में जातिगत असमानता और सामाजिक बहिष्करण के प्रश्नों के संदर्भ में डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म को अपनाया जाना एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। 1956 का उनका बौद्ध धर्म ग्रहण आंदोलन बौद्ध परंपरा को सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और समानता के आधुनिक विमर्श से जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी बना (आंबेडकर, 1957; ओम्वेट, 2003, पृ. 220–230)।

अंततः, इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव किसी एक सामाजिक क्षेत्र तक सीमित नहीं था। सामाजिक संबंधों, नैतिक चिंतन, मठीय संस्थाओं, व्यापारिक नेटवर्क, शिक्षा, साहित्य, कला और अंतर-सांस्कृतिक संपर्क—इन सभी क्षेत्रों में इसके प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देते हैं। साथ ही, इसके ऐतिहासिक मूल्यांकन में न तो इसे पूर्ण सामाजिक समानता का आधुनिक प्रतिरूप मानना उचित है और न ही इसके अवसान को किसी एक धार्मिक या राजनीतिक कारण से समझा जा सकता है। बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक महत्ता इसी जटिलता में निहित है कि उसने अपने समय की अनेक सामाजिक एवं

बौद्धिक प्रवृत्तियों को चुनौती दी, उनसे संवाद किया और भारतीय सभ्यता के विकास में एक दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ा।

इस प्रकार बौद्ध धर्म का अध्ययन हमें यह समझने में सहायता करता है कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन एक सतत, बहुस्तरीय और अंतःक्रियात्मक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। बौद्ध परंपरा की करुणा, नैतिकता, विवेक और मानवीय समानता पर आधारित चिंतन-परंपरा आज भी सामाजिक न्याय, सह-अस्तित्व और मानवीय गरिमा से जुड़े विमर्शों के लिए एक सार्थक बौद्धिक संसाधन प्रस्तुत करती है।

Declaration of Conflicting Interests

The authors declare no potential conflicts of interest with respect to the research, authorship and publication of this article.

Funding

The author received no financial support for the research, authorship and publication of this article.

संदर्भ सूची (References)

1. दीघ निकाय (Dīgha Nikāya), पालि ग्रंथ। (अनुवाद: वाल्श, 1995)
2. मज्झिम निकाय (Majjhima Nikāya), पालि ग्रंथ। (अनुवाद: नानामोली, 1992)
3. संयुत्त निकाय (Saṃyutta Nikāya), पालि ग्रंथ। (धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त, 56.11)
4. अंगुत्तर निकाय (Aṅguttara Nikāya), पालि ग्रंथ।
5. सुत्तनिपात (Suttanipāta), पालि ग्रंथ। (वसल सुत्त)
6. थेरिगाथा (Therīgāthā), पालि ग्रंथ।
7. विनय पिटक (Vinaya Piṭaka), पालि ग्रंथ। (अनुवाद: होरनर, 1949)
8. मिलिन्द पन्ह (Milindapañha), पालि ग्रंथ।

9. आंबेडकर, बी.आर. (1957). *The Buddha and His Dhamma*. Bombay: Siddharth College.

10. बशम, ए.एल. (1954). *The Wonder That Was India*. London: Sidgwick & Jackson.

11. चक्रवर्ती, दिलीप के. (1995). *Ancient India: From the Origins to 1300 AD*. Delhi: Macmillan.

12. फोगेलिन, लार्स (2015). *An Archaeological History of Indian Buddhism*. Oxford: Oxford University Press.

13. फॉक, नैन्सी (1980). *Daughters of the Buddha*. California: Berkeley (Unpublished Doctoral Dissertation).

14. गोम्ब्रिच, रिचर्ड (1988). *Theravāda Buddhism: A Social History from Ancient Benares to Modern Colombo*. London: Routledge.

15. हार्वे, पीटर (1990). *An Introduction to Buddhism*. Cambridge: Cambridge University Press.

16. होरनर, आई.बी. (अनुवादक) (1949). *The Book of the Discipline (Vinaya-Piṭaka)*, Vols. 1-6. Oxford: Pali Text Society.

17. कोसंबी, डी.डी. (1965). *The Culture and Civilization of Ancient India*. London: Routledge & Kegan Paul.

18. कोसंबी, विनोद (1960). *अशोक के शिलालेख*. Varanasi: Hindi Pracharak Mandal.

19. कुमार, मनोरंजन (2015). "बौद्ध धर्म का भारतीय समाज पर प्रभाव (छठी शताब्दी ईसा पूर्व से छह सौ ईस्वी तक)". *International Journal of Research and Analytical Reviews (IJRAR)*, Vol. 2, Issue 1, pp. 112-124.

20. नानामोली, भिक्खु (अनुवादक) (1992). *The Middle Length Discourses of the Buddha: A Translation of the Majjhima Nikāya*. Boston: Wisdom Publications.

21. ओम्वेट, गेल (2003). *Buddhism in India: Challenging Brahmanism and Caste*. New Delhi: Sage Publications.

22. पाण्डे, जी.सी. (1995). *Studies in the Origins of Buddhism*. Allahabad: Sahitya Bhawan.

23. राइस डेविड्स, टी.डब्ल्यू. (1899). *Dialogues of the Buddha* (Vol. 1). London: Pali Text Society.

24. सिंह, राधा कृष्ण (1965). *बौद्ध संस्कृति का भारतीय समाज पर प्रभाव*. Patna: Bihar Rashtrabhasha Parishad.

25. सोनी, बी.पी. (2025). "प्राचीन बौद्ध धर्म और महिलाएँ". *International Journal of Innovative Research and Creative Technology (IJIRCT)*, Vol. 11, Issue 1, pp. 20-35.

26. थापर, रोमिला (1966). *A History of India* (Vol. 1). London: Penguin Books.

27. वाल्श, मौरिस (अनुवादक) (1995). *The Long Discourses of the Buddha: A Translation of the Dīgha Nikāya*. Boston: Wisdom Publications.

28. विजयबाहु, डी.जे. (1967). *Buddhism in Ceylon*. Colombo: U.N. University Press.